भारतीय कला के मुख्य तत्त्व

भारतीय कला भारतवर्ष के विचार धर्म, तत्वज्ञान और संस्कृति का दर्पण है। भारतीय जन जीवन की पुष्कल व्याख्या कला के माध्यम से हुई है। यहां के लोगों का रहन-सहन कैसा था, उनके भाव क्या थे, देवतत्व के विषय में उन्होंने क्या सोचा था, उनकी पूजाविधि कैसी थी और पंचभूतों के धरातल पर उन्होंने कितना निर्माण किया था इसका अच्छा लेखा--जोखा भारतीय कला में सुरक्षित है। वास्तु, शिल्प, मूर्तियां, चित्र, कांस्य प्रतिमा, मृद्‌भाजन, दंतकर्म, काष्ठ कर्म, मणिकर्म, स्वर्णरजत कर्म, वस्त्र आदि के रूप में भारतीय कला की सामग्री प्रभूत मात्रा में पायी जाती है। देश के प्रत्येक भाग में कला के निर्माण की ध्वनि सुनाई पड़ती है। एक युग से दूसरे युग में कलात्मक के केन्द्र दिशा--दिशाओं में छिटकते रहे, किंतु यह विविध सामग्री समुदित रूप से भारतीय कला के ही अन्तर्गत है।

भारतीय कला को दीर्घकालीन रूप सत्र कहना उचित है, जिसमें देश के प्रत्येक भू भाग में अपना अर्घ्य अर्पित किया है। इस रूप समृद्धि में अनेक जातियों ने भाग लिया है, किन्तु इसकी मूल प्रेरणा और अर्थव्यंजना मुख्यतः भारतीय ही है। जब भारतीय संस्कृति का प्रसार समुद्र पार और पर्वतों के उस पार हुआ तब भारतीय कला के रूप और उसके अर्थ भी उन २ देशों में बद्ध मूल हुए। सुभाग्य से वह सामग्री आज भी अधिकांश में सुरक्षित है। और भारतीय कला के यशः-प्रवाह की कथा कहती है। द्वीपान्तर या हिंदेशिया से लेकर मरु-चीन या मध्य-एशिया तक का विशाल भू-खण्ड भारतीय कला की मेघवृष्टि से उत्पन्न फुहारों से भर गया। वह आन्दोलन कितना गम्भीर और बलिष्ठ था। इससे आज भी आश्चर्य होता है। भारतीय कला के संपूर्ण ब्यौरेवार अध्ययन के लिए यह आवश्यक है कि भारतीय धर्म, दर्शन और संस्कृति के साथ मिलाकर उसे देखा जाय। जिसकी सामग्री वेद, पुराण, काव्य, पिटक, आगम आदि नानाविध भारतीय साहित्य में पायी जाती है।

तिथि-क्रमः—

कला की यह सामग्री देश और काल दोनों में महा विस्तृत है। इसका आरम्भ सिंधु उपत्यका में तृतीय सहस्राब्दि ईस्वी पूर्व से होता है और लगभग ५ सहस्त्र वर्षों तक इसका इतिहास पाया जाता है। इस तिथि-क्रम का लगभग सुनिश्चित आधार इस प्रकार है।

१. सिंधु सभ्यता की कला – लगभग २५०० – १५०० ई० पू०

२. वैदिक सभ्यता – लगभग २००० – १००० ई० पू०

३. महाजनपद युग – लगभग १२०० – ६०० ई० पू०

४. शैषनाग नन्द युग – लगभग ६००– ३२६ ई० पू०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५. मौर्य युग ——लगभग – ३२५ – १८४ ई० पू०

६. शुंग काल – लगभग १८४ – ७२ ई० पू०

७. काराव वंश – लगभग – ७२ – २७ ई० पू०

८. बाह्लीक – यवन और भद्रक यवन – लगभग २५० – १५० ई० पू०

९. शहरात शक – लगभग प्रथम ई० पूर्व – ३९० ई०

१०. सातवाहन वंश – लगभग २०० ई० पू० — २०० ई०

११. शक कुषाण – लगभग ८० ई० पू०–दूसरी शती ई०

१२. आन्ध्र देश का इक्ष्वाकुवंश—तीसरी शती ईस्वी

१३. गुप्त युग –लगभग ३१९ ई० —६०० ई०

१४. चालुक्य युग – लगभग — ५५० ई० – ६४२ ई०

१५. राष्ट्रकूट युग—लगभग ७५३ ई०—९७३ ई०

१६. पल्लव वंश—लगभग ६०० ई०–७५० ई०

१७. चोल युग—लगभग ९००–१०५३ ई०

१८. पांड्य वंश – लगभग १२५१ ई०—१३१० ई०

१९. होयसल वंश — १२–१३ वीं शती

२०. विजयनगर वंश – लगभग १३३६–१५६५ ई०

२१. उड़ीसा के गंग और केसरी वंश — ११वीं से १३वीं शती

२२. मगध का पाल और बंगाल का सेनवंश — लगभग ९वीं से १२वीं शती

२३. गुर्जर प्रतिहार वंश — ७५०–९५० ई०

२४. चन्देल वंश—९००–१००० ई०

२५. गाहड़वाल—१०८५–१२०० ई०

२६. सोलंकी वंश – ७६५–१२०० ई०

कला के आंदोलन एक समय जन्म लेकर फूलते फलते और वृद्धि को प्राप्त होते हैं। जल तरंगों की भांति वे अपना वेग दूसरे युग की प्रेरणाओं को सौंप कर विलीन हो जाते हैं। कला के तिथि-क्रम को इसी उदार भाव से देखना चाहिए। राजाओं के छत्र या नृपावली के पर्यवसान के साथ कला का प्रवाह ठप्प नहीं हो जाता। ऊपर जिस तिथि–क्रम का उल्लेख है, उसमें सिंधु घाटी से लेकर नन्द युग वंश के पूर्व तक भारतीय कला का आद्य युग है। तदुपरान्त मौर्य काल से हर्ष के समय तक उसका मध्य युग है, जो उसके समुदीर्ण यौवन का युग है। इसके भी दो भाग हो जाते है। एक के अन्तर्गत मौर्य, युग, कराव और पूर्व सात-वाहन युग की महान कला कृतियां हैं। इस पूर्व युग में कला के अंकुर भिन्न २ प्रदेशों में उठाव ले रहे थे। सारनाथ, भरहुत, सांची, बोधगया, अमरावती, भाजा, उसी के रूप हैं। इस

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

युग के उत्तरार्ध में प्रथम शती ईस्वी से लेकर लगभग ७वीं शती तक अर्थात् कनिष्क से हर्ष तक की कला-कृतियां आती है। यह भारतीय कला का आद्य युग है इसमें कला की प्रौढ़ता राष्ट्रीय स्तर पर देश के चारों खूंटों में फैल जाती है। उसका बाह्य रूप और भीतरी अर्थ दोनों राष्ट्र सम्मत स्तर पर मान्यता प्राप्त करते हैं और न केवल स्वदेश में किंतु विदेशों में भी भारतीय कला का प्रभविष्णु रूप व्याप्त हो जाता है। इन ७०० वर्षो में भारतवर्ष में कला, साहित्य, दर्शन और जीवन का सर्वोच्च विकास हुआ और जनता के मन में इस प्रकार की धारणा बनी – न भारत समं वर्षं पृथिव्यामस्ति भो द्विजाः–यह कथन बहुत अंशों में सत्य था। उस युग में भारत, चीन, ईरान और रोम इन चारों का एकाधिपत्य साम्राज्य था और इनके शासक जगदेकनाथ समझे जाते थे। किन्तु इनमें भी भारत की श्री समस्त जम्बूद्वीप में सर्वोपरि थी।

हर्ष युग के बाद भारतीय कला का चरम युग आता है, जिसे मध्य काल (७००–१२००) भी कहते हैं। उसके भी २ भाग हैं—पूर्व मध्यकाल (७००–९०० ई०) और उत्तर मध्यकाल (९००-१२०० ई०)। काल के इस दीर्घ पथ पर भारतीय कला के सतत और दृढ पदचिन्ह महान् कृतियों के रूप में हमारे सामने हैं, मानो सौन्दर्य का कोई विराट् देवता पूर्व, पच्छिम, उत्तर, दक्षिण चारों दिशाओं में चला हो और अपने पीछे नाना प्रकार की शिल्प, वास्तु, चित्रादि सामग्री भरता गया हो। इस कला की कथा एक ओर सरल है क्योंकि उसमें एक सूत्र पिरोया हुआ है। दूसरी ओर जटिल है क्योंकि उसके ताने बाने में नानाविध तन्तुओं का समावेश है। भारतीय कला के पारखी इतिहासवेत्ता को चाहिए कि जहां जो स्थानीय, प्रादेशिक और राष्ट्रीय संदर्भ वितान, रूप, शैली, अलंकरण, प्रभाव और अर्थ है उनको अलग पहचान कर उनकी व्याख्या करें।

प्राप्ति स्थान

प्राप्ति स्थान और तिथि क्रम ये दोनों कला वस्तु के अध्ययन में सहायक होते हैं। इनका आधार प्रख्यात्मक होता है और सावधानी से प्राप्ति स्थान सम्बन्धी सूचना का संग्रह करना चाहिए। अधिकांश अवशेषों और वस्तुओं के प्राप्ति स्थान विदित होते हैं। उनके द्वारा कला की वस्तुओं का संदर्भ सुविज्ञात हो जाता है। इसके अतिरिक्त पाषाण प्रतिमाओं और वास्तु खंडों के लिए पत्थर की जाति और रङ्ग से ही उनसे संदर्भ का संकेत मिलता है। उदाहरण के लिए सिंधु घाटी में कीर–थर पहाड़ी की खदानों का सफेद खड़िया पत्थर या मौलाभाटा काम में लाया जाता था। : मौर्य कला के लिए चुनार की खदानों का हल्के गुलाबी रङ्ग का ठोस बलुआ पत्थर काम में लाया गया। मथुरा कला में मजीठी रंग का चित्तीदार बलुहा पत्थर जो सीकरी, बयाना आदि स्थानों में मिलता है प्रयुक्त किया गया। गन्धार कला में नीली झलक का सलेटी या पपड़ियां या परतहा तिलकुट पत्थर काम में लाया जाता था। गुप्त-काल में स्थानीय लत्छौंह या मयवरी पत्थर का प्रयोग होता था। पाल युग में काले या गहरे नीले रङ्ग का नयावाल तेलिया पत्थर नीलापन, (Black Basalt) काम में लाया गया। चालुक्य कला में पीले रंग का बलुहा पत्थर काम में आता था। अमरावती और नागार्दिनीकुंडा आदि के स्तूपों में विशेष प्रकार का श्वेत खड़िया पत्थर (Limestone) काम में आता था, जिसे वहां की भाषा में अमृत शिला कहते हैं और जो हमारे यहां के संगमरमर से मिलता है। इसी प्रकार उड़ीसा के मंदिरों में राजा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रानियां या मुगना (Crcrite) पत्थर, कहीं कुडथा (Granite) और कही ढुसरिया पत्थर (Late rite) और कहीं सेल खड़ी या संगजराहत (Alabaster) और कहीं संगमरमर (संस्कृत मुक्ता शैल) काम में लाया गया। इस प्रकार भिन्न २ पत्थरों की चाल से कलात्मक सामग्री के स्थानीय भेदों का निर्पेक्ष मिल जाता है।

काल निर्धारण

वस्तुओं का काल निर्धारण प्रायः उत्कीर्ण लेखों के आधार पर किया जाता है। जैसे स्तूप, मंदिर, शिलापट्ट या मन्दिर का चौकी पर उत्कीर्ण लेख सम्बधित सामग्री के काल की सूचना देता है। इस साक्षी के अभाव में शैली ही समय का संकेत बताती है। पुरातत्व की खुदाई में प्राप्त सामग्री को जैसे लेख, मुद्रा, मृतपात्र, खिलौने को पूर्वापरीय स्तरों के आधार पर जांच कर उनका समय निश्चित करते हैं। कला सामग्री के बहिरङ्ग अध्ययन का उद्देश्य उसकी ऐतिहासिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का अवधारण करना है जिसके लिए प्राप्ति–स्थान, समय और शैली इन तीनों के परिचय की आवश्यकता होती है।

अर्थ-व्यंजना

कलात्मक वस्तु की बहिरंग परीक्षा हमें उस बिंदु पर ले जाती है, जहां उसकी अंतरंग परीक्षा वा अर्थ की व्याख्या आरम्भ होती है। प्रत्येक कला वस्तु किसी मनोगत भाव का स्थूल प्रतीक है। अतएव सच्चे कला पारखी की रुचि कला द्वारा भाव या अर्थ की व्यजंना में है। भारतीय सौंदर्य शास्त्र के अनुसार कला और काव्य के ४ तत्व या अंग माने गए है – १. रस, २. अर्थ, ३. छन्द, और ४. शब्द (काव्य के लिए) या रूप (कला के लिए)।

रस

रस कला की आत्मा है। यह अध्यात्म गुण है जिसमें कृति का स्थायी मूल्य निहित रहता है। इसे मौलिक, आवश्यक और अतर्क्य दिव्य गुण कहना चाहिए, जो प्रत्येक सच्ची काव्य कृति या कला कृति में पाया जाता है। मनुष्य का मन भावों का समुद्र है। भावों की समष्टि से ही रस का उदय होता है। मनुष्य के मन में जो नाना भाव जन्म लेते हैं, उन्हें ही कला और काव्य द्वारा व्यक्त किया जाता है। काव्य के पंडित आलंकारिकों के अनुसार काव्य में ८ या ९ रस माने गए है, जिनके पृथक पृथक भाव हैं। कला कृति से रसिक के मन में भावों का उद्वेग होता है। कवि और कलाकार सर्वप्रथम अपने मानस में रस या भाव विशेष की आराधना करते हैं और फिर उसे शब्द या रूप के द्वारा स्थूल या इंद्रिय गाही माध्यम से व्यक्त करते हैं।

अर्थ

मन में रस का स्मरण होने पर कवि और कलाकार उस अर्थ या विषय को चुनते हैं जिसके द्वारा रस या भाव स्फुटित होते हैं। अर्थ का अभिप्राय वर्ण या आलेख्य गत विषय से है। भारतीय कला की अर्थ-संपत्ति के अंतर्गत नाना देव और देवियों का विस्तार है, जो विश्व की दिव्य और भौतिक शक्तियों के प्रतीक हैं। इन देव-देवियों के विषय में वेदों ओर पुराणों में अनेक महाख्यान हैं। उनका उद्देश्य ज्योति और तम, सत और असत, अमृत और मृत्यु के द्वन्द्व की व्याख्या करना है। प्राचीन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिभाषा में इस द्वन्द्व को देवासुर कहा गया है, अर्थात् देवों और असुरों के शाश्वत संग्राम की परिकल्पना से संग्राम इतिहास की काल बिजड़ित घटनायें नही। किंतु दिव्य भावों की नित्य लीलायें हैं, जो देश और काल में सदा और सर्वत्र घटित होती है। बुद्ध, महावीर आदि महापुरुष और इन्द्र, शिव, विष्णुकुमार आदि देव प्रकाश और सत्य के प्रतीक हैं। इसके विपरीत वृत, मार महिष, त्रिपुरासुर और तारकासुर असत या अन्धकार के प्रतीक है। अर्थ ही कला का सच्चा चक्षु है। प्रत्येक कला की कृति के ललाट पर उसकी अर्थ लिपि अंकित रहती है। उसे उसी प्रकार पढना चाहिए जिस प्रकार की अर्थवत्ता के लिए उसके निर्माताओं ने उसे लिखा था। भारतीय कला के सांस्कृतिक उद्देश्य के ज्ञान के लिए उसके अर्थ का परिचय का ज्ञान अत्यावश्यक है। अर्थ की जिज्ञासा हमें कला के प्रतीकात्मक स्वरूप के समीप ले जाती है। जैसे चक्रपूर्ण घट, स्वास्तिक, पद्म, श्री लक्ष्मी, अष्ट मंगल अथवा अष्टोत्तर शत मंगल चिन्ह एवं गरुड़, नाग, यक्ष आदि कला के प्रतीकों द्वारा अर्थ की प्रतीक कला सम्बन्धी अध्ययन का समीचीन क्षेत्र है।

द्वन्द्व

पुराणों में कहा है कि यह विश्व की रचना द्वन्द्व सृष्टि है। इसके मूल में एक विराट द्वन्द्व ताल, लय, या मात्रा है। उसी द्वन्द्व से सौन्दर्य तत्व के लिए आवश्यक सामन्जस्य और संपुञ्जन एवं सन्तुलन एवं संमति का निर्धारण किया जाता है। अतएव भारतीय कला की आवश्यक अंग ताल मांग है। विश्व की प्रतीक वस्तु प्रमाण सुनियत है। वही कलाकार के लिए प्रमाण या नमूना बनती है। जिसे वह ध्यान की शक्ति से चित्त में उतारता है और फिर वह अंकन लेखन या वर्णन में लाता है।

रूप या शब्द

कला का चौथा अंग भाव को भौतिक धरातल पर लाना है। इसे काव्य के लिए शब्द और कला के लिए रूप कहते हैं। शिल्प, चित्र, वास्तु को व्यक्त करने के माध्यम अलग हैं, किंतु वे सब भावों के मूर्त्त रूप हैं। उनकी भाषा प्रत्यक्ष होती है, और वे इंद्रियों के माध्यम से भव पर प्रभाव डालते हैं। कला के इस तत्व चतुष्टय के सम्बन्ध में गोस्वामी जी का अर्थ संघानात् वर्णानाम् रसानम् द्वन्द्वसामपि यह स्मरणीय है।

चित्त का महत्व

मनोभाव और कला के बाह्य रूप इन दोनों को जोड़ने वाला माध्यम कला है। मन के भाव को अधिकतम सौन्दर्य के साथ मूर्त्त रूप में प्रकट करना ही कला है। कला के द्वारा मनोभावों की छाप भौतिक पदार्थों पर अंकित की जाती है। इसी विशेषता के कारण कला मानवीय हृदय के इतनी निकट होती है। जो कुछ मन में है वह कला में आता है किंतु सर्वातिशाही सौन्दर्य गुण के साथ जैसे मधुर संगीत से श्रोत्र वैसे ही रूप से नेत्र तृप्त होते है और वे भाव हृदय में पहुंच कर विचित्र प्रकार के सूक्ष्म रस को उत्पन्न करते हैं। सच्चा कला पारखी रसिक, सहृदय या विचक्षण कला के सौरभ का देर तक अनुभव करता है और उसके अमृत आनन्द का पान करता रहता है। इस प्रकार कला की सौन्दर्य से मुग्ध हो जाने की जो मानसी शक्ति है उसे ही संवेग कहते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सच्ची कला के एक शाश्वत रूप सत्र है। उसका सौन्दर्य छीजता नहीं। उसके लावण्य की ध्वनि फिर २ कर मन में आती है। समस्त कला मानसी शिल्प है, किंतु वह देव शिल्प की अनुकृति है। कलाकार के हृदय में जो देवी प्रेरणा आती है वही शब्द और रूप एवं अर्थ को दिव्य सौन्दर्य से प्लावित कर देती है।

अलंकरण

भारतीय कला अलंकरण प्रधान है। आरम्भ से ही कलाकारों ने अपनी कृतियों का अनेक भांति अलंकरणों से सज्जित करने में रुचि ली। अलंकरण साज-सज्जा के अभिप्राय तीन प्रकार के हैं-१, रेखाकृति (प्रधान), २—पत्तवल्लरी प्रधान, और ३—ईहामृग या कल्पना प्रसूत पशु-पक्षियों की आकृतियां इन अभिप्रायों के मूल रूप प्राकृतिक जगत से लिए गए हैं किंतु कलाकारों ने अपनी कल्पना के बल पर उन्हें अनेक रूपों में विकसित किया है। कहीं गौण आकृति के रूप में, कही मूल अर्चा या प्रतिभा को चारों ओर से सुसज्जित करने के लिए, कहीं रिक्त स्थान को रूपाकृति से भर देने के लिए अलंकरणों का विधान किया गया है जिनका उद्देश्य कला में सौन्दर्य की अभिवृद्धि है। किंतु शोभा के अतिरिक्त अभिप्रायों के दो उद्देश्य और थे, एक तो आरक्षा के या मंगल के लिए—दूसरे विशेष अर्थों की अभिव्यक्ति के लिए इन अलंकरणों को भारतीय परीभाषा में मांगल्य चिन्ह कहा गया है और उनकी रचना का द्विविध उद्देश्य माना है—शोभनार्थ एवं आरक्षार्थ। शोभा या सौन्दर्य का उद्देश्य तो स्पष्ट ही है। आरक्षा का तात्पर्य है अमंगल या अशुभ से मुक्ति। भारतीय सौन्दर्य शास्त्र के अनुसार शून्य या रिक्त स्थान में असुरों का बासा हो जाता है किंतु यदि वृहादिक आवास या देव गृह में मांगलिक चिन्ह लिखे जांय तो दवीश्री और रक्षा स्थान में अवतीर्ण होती है। स्वस्तिक पूर्ण घट या कमल का फुल्ला (पदुमक) को जब हम देखते हैं तो उनसे नाना प्रकार के मांगलिक अर्थ मन में भर जाते हैं। इस प्रकार के मांगलिक चिन्ह अनेक हैं वे सब भगवान की विभूतियों के कलात्मक रूप हैं। उनमें से इच्छा अनुसार एक या अनेक का वरण किया जा सकता है। उदाहरण के लिए एक गज चिन्ह इन्द्र के श्वेत ऐरावत के द्योतक है, अश्व उच्चैश्रवा अश्व का प्रतीक है जो समुद्र मंथने से उत्पन्न हुआ था और स्वर्ग लोक का मांगलिक पशु है। सूर्य ही तो वह विराट् अश्व है जो काल या संवत्सर के रूप में सबके जीवन में प्रविष्ट है। जब हम गौ का अलंकरण उत्कीर्ण करते हैं तो उस देव अदिति संज्ञक देव माना के दर्शन करते हैं जिसे वेदों में गौ कहा गया है। ऐसे ही नर रूप में गौ वहवृषम है जो इन्द्र या रुद्र का रूप है। इस प्रकार भारतीय कला के सुन्दर अभिप्राय धर्म और संस्कृति की पृष्ठभूमि में सार्थक हैं। गुप्त युग में लता की सरल और पेचीदी आकृतियां बनाने की बहुत प्रथा थी। उनके कई अच्छे नमूने घमेख स्तूप के आच्छादन शिला पट्टों पर सुरक्षित हैं। एक मूल से उठ कर लताओं के प्रतान पेचक बनाते हुए कहीं से कहीं जा मिलते हैं। एवं वल्लरियों का वह बिखरा हुआ किंतु संष्लिष्ट रूप नेत्रों को अत्यन्त प्रिय लगता है। उनसे कला को नयी रमणीयता प्राप्त होती है। इस प्रकार की पत्र रचना से उत्कीर्ण एक शिलापट्ट का भी बहुत महत्व समझना चाहिए। इसका मूल भाव यही था कि प्रकृति की जो विराट् प्राणात्मक रचना पद्धति है उसी के अङ्ग-प्रत्यङ्ग पशु-पक्षी, वृक्ष और फल-फूल यक्ष, वामन, कुब्जक, मनुषादि हैं। सचा मनुष्य जीवन वही है जो इन सब में रुचि लेता है। बाणभट्ट ने लिखा है कि रानी विलासवती के प्रसूति ग्रह की भित्तियों को पत्र लताओं की मांगलिक आकृतियों से भर दिया गया था जिन पर दृष्टि डालने से रानी के नेत्रों को सुख

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

The Mūlaprāsāda (fig 1) pp.231

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

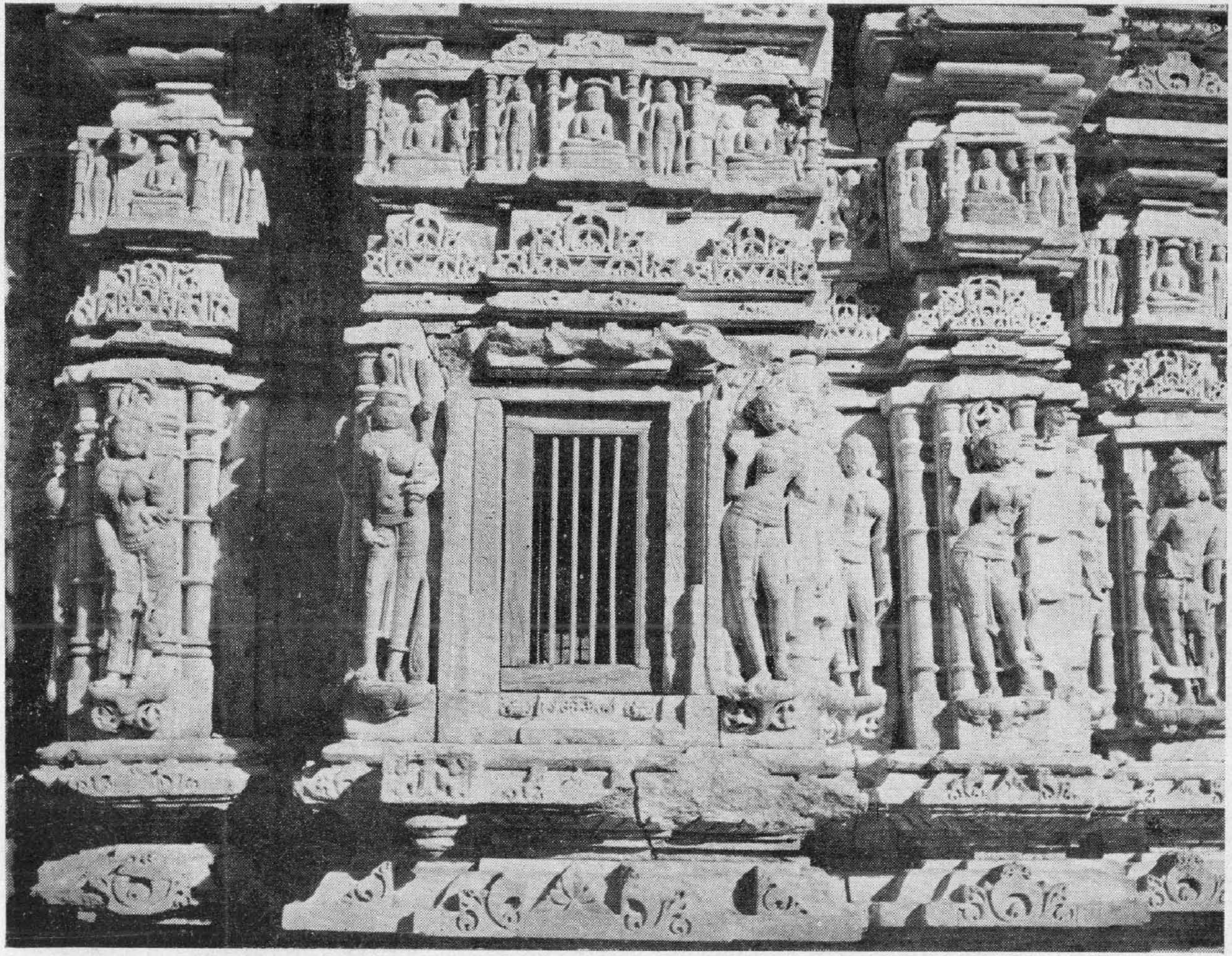

The Mūlaprāsāda--South wall (fig. 2) pp. 231

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

The Mūlaprāsāda—South West part of the wall (fig. 3) pp. 231

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

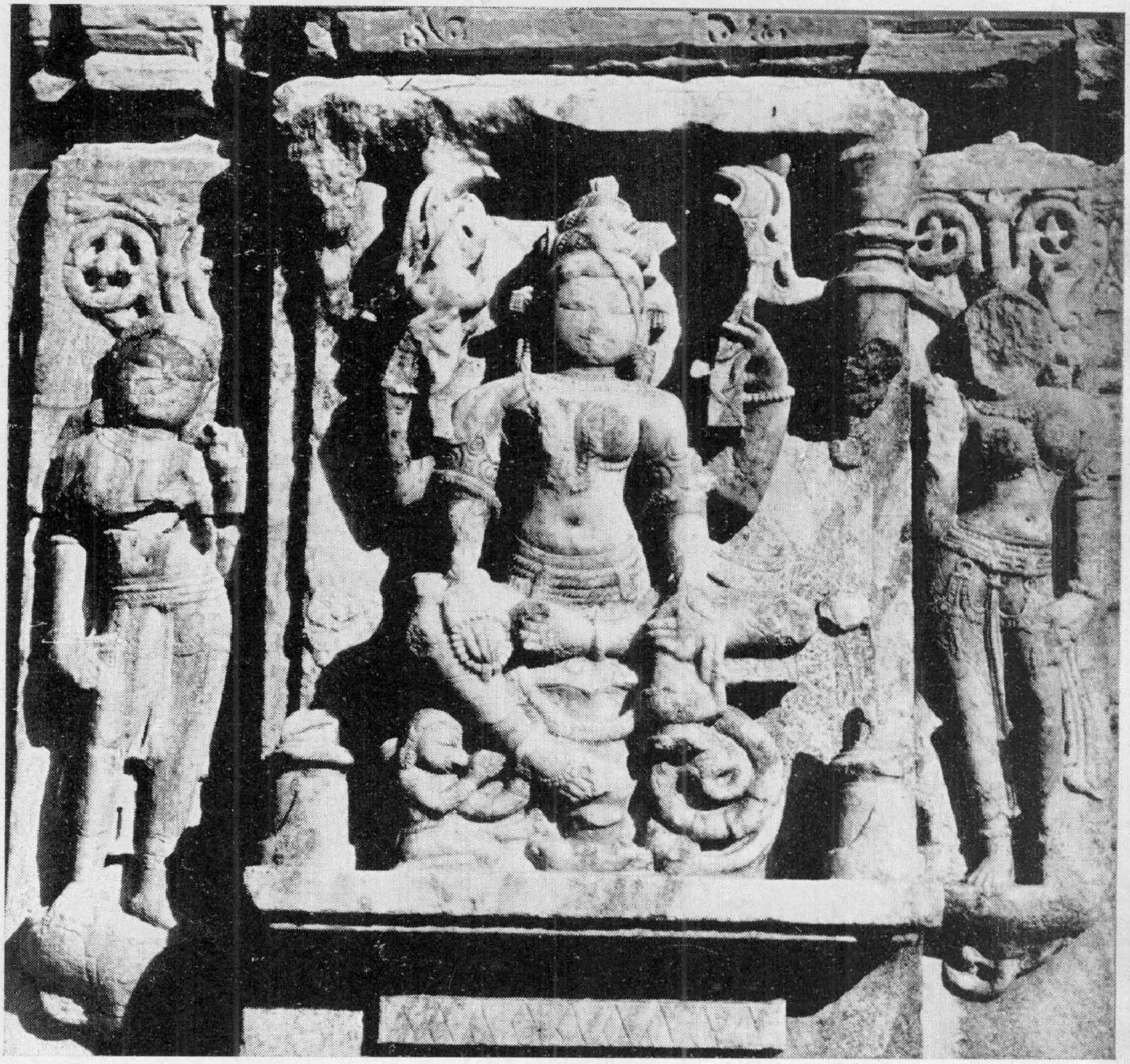

Saraswati, western Bhādrā Gūdhamandapa (fig 4) pp. 231

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

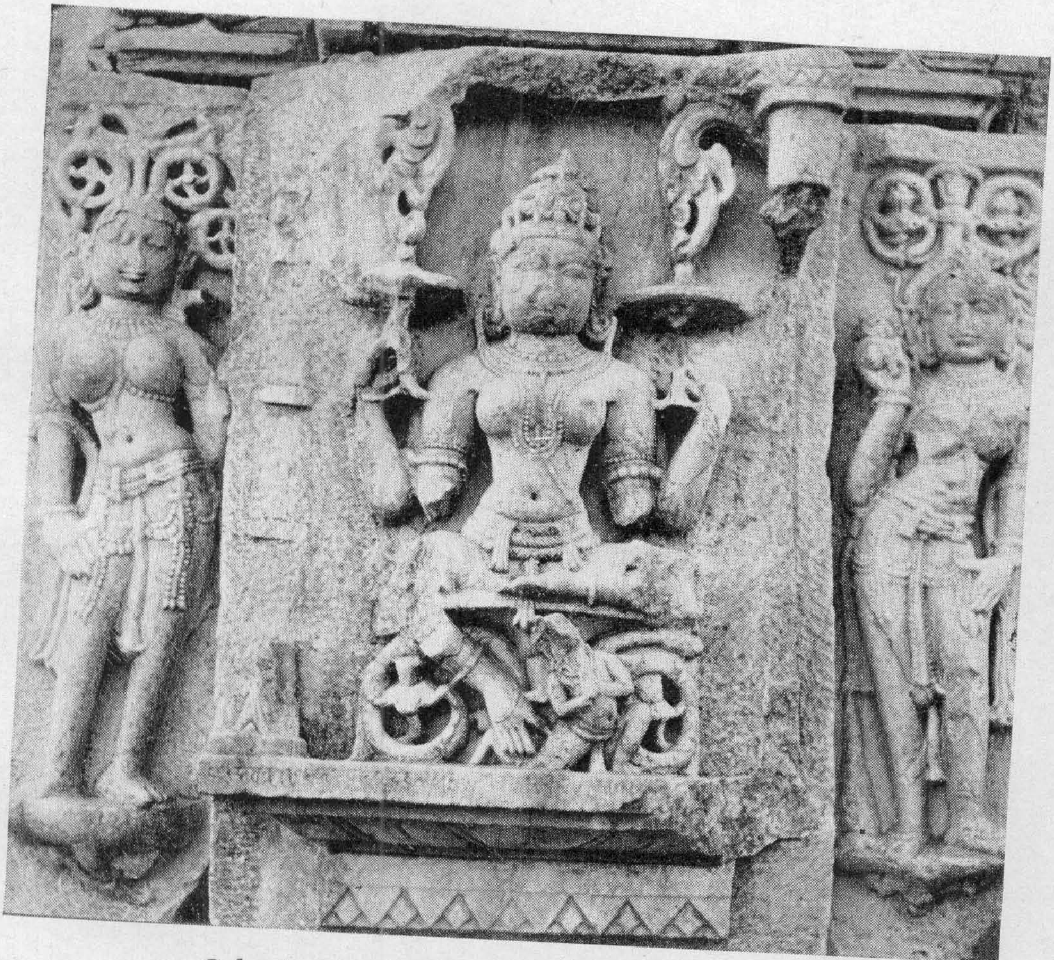

Cakreśvarı—east Bhadra S1106 (fig 5) pp. 231

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jivantswāmi Mahāvira, front karna, west Gūḏhamaṇḍapa (fig. 6) pp. 231

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

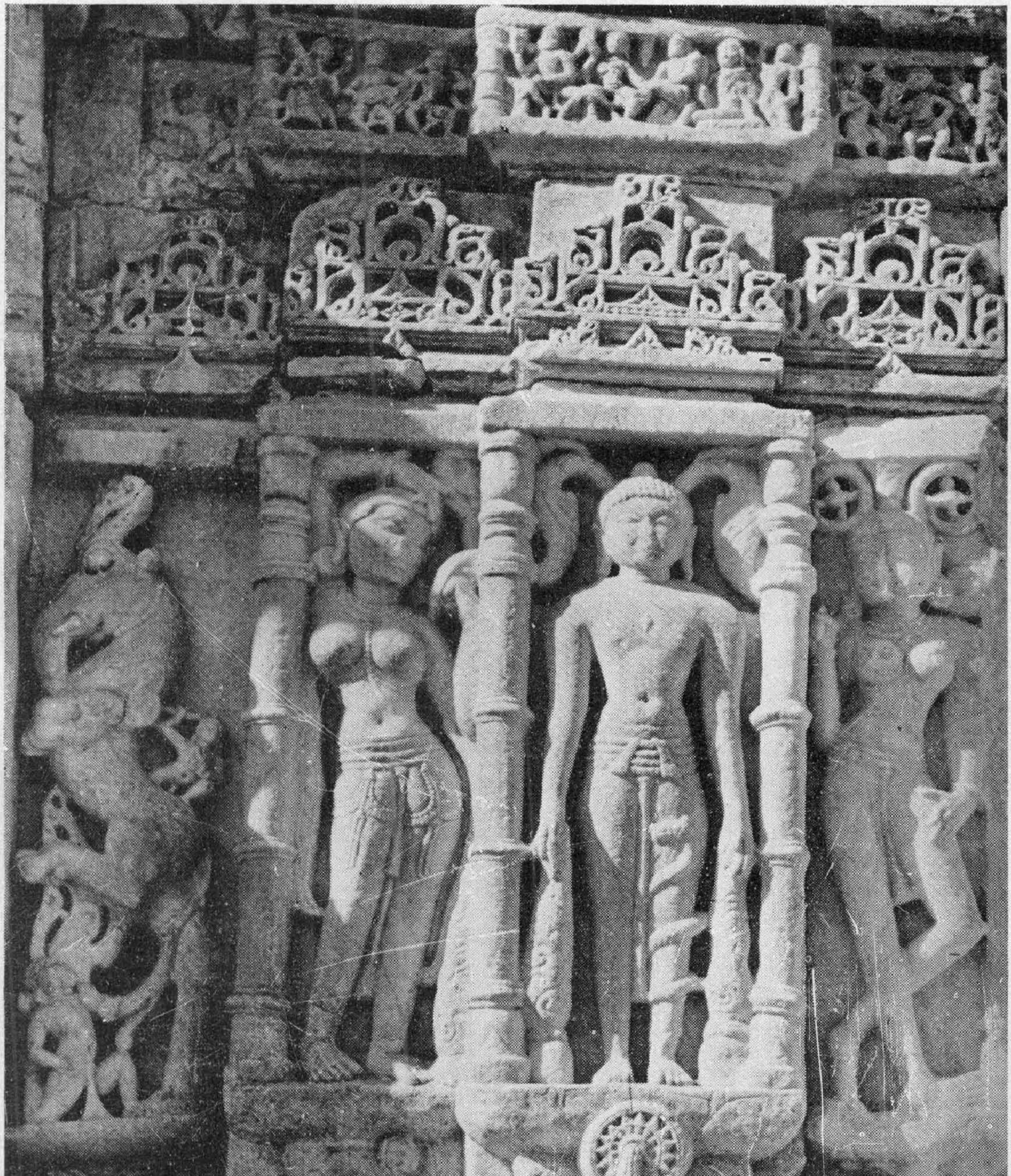

Standing Kāyotsarga, Jina front karna east
Gūḍhamaṇḍapa (fig. 7) pp. 231

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Devakulikas around the Rangamandapa (fig 8) pp. 232

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिलता था और जिनके द्वारा आसुरीशून्यता से उसकी रक्षा होती थी। गुप्तकालीन कला शिल्प, चित्र और स्थापत्य इस प्रकार के अलंकरणों से बहुत भरी हुई है। कुषाण काल की कला ईहामृग या विकृताकृति पशुओं से भरी हुई है क्योंकि इस प्रकार के ऐंठे गेंठे शरीर वाले पशुओं में शकों को स्वयं बहुत रुची थी।

सांस्कृतिक जीवन

भारतीय कला की एक विशेषता उसमें अंकित सांस्कृतिक जीवन की सामग्री है। राजा और दोनों के जीवन का ही खुल कर चित्रण किया गया है। कला मानो साहित्यिक वर्णनोंकी व्याख्या प्रस्तुत करती है। कोई चाहे तो कला की सामग्री से ही भारतीय जीवन और रहन-सहन का इतिहास लिख सकता है। भारतीय वेश-भूषा, केश विन्यास, आभूषण, शयनासन, आदि की सामग्री चित्र शिल्प आदि में मिलती है। छोटी मिट्टी की मूर्तियां भी इस विषय में सहायक हैं। उनमें तो सामान्य जनता को भी स्थान मिला है। भरहूत, सांची, अमरावती नागार्जुनी कुंडा आदि के महान स्तूपों पर मानों जनता के जीवन की शत साहस्त्री संहिता ही मानो लिखी हुई है। भारतीय कला सदा जीवन को साथ ले कर चली है। अतएव उसमें सम सामयिक जन जीवन का प्रतिबिम्ब पाया जाता है।

धार्मिक जीवन

देश में समय-समय पर जो महान् धार्मिक आंदोलन हुए हैं और जिन्होंने लोक जीवन पर गहरा प्रभाव डाला है उनसे भी कला को प्रेरणा मिली और उनकी कथा कला के मूर्त्त रूपों में सुरक्षित हुई है। उस विषय में कला की सामग्री कहीं तो साहित्य से भी अधिक सहायक है। यक्षों और नागों का बहुत अच्छा परिचय भरहुत, सांची और मथुरा की कला में मिलता है। इसी प्रकार उत्तर कुरु के विषय में जो लोक विश्वास था उसका भी उत्साहपूर्ण अंकन भाजा, भरहुत, सांची आदि में हुआ है। मिथुन, कल्पवृक्ष, कल्पलता आदि अलंकरण उसी से सम्बन्धित है जिनका वर्णन जातक, रामायण, महाभारत आदि में पाया है। दुकूल वस्त्र, पनसाकृति पात्रों में भरा हुआ उत्तम मधु, आम्राकृति पात्रों में भरा हुआ लाक्षा रस, सिर, कान, ग्रीवा, बाहु और पैरों के आभूषण एवं, स्त्री पुरुषों की मिथुक मूर्तियां—सबका जन्म कल्प वृक्ष और कल्प लताओं से दिखाया गया है। वस्तुत: प्रत्येक व्यक्ति का समस्त जीवन ही एक कल्प वृक्ष है जिसकी छाया में वह अपनी इच्छा के अनुसार फूलता फलता है। प्रत्येक का मन ही महान् कल्प वृक्ष है, कल्पना या संकल्प जिसका सुन्दर रस है।

कला के प्रतीकात्मक विषय

भारतीय कला के जो वर्ण्य विषय हैं वस्तुत: उनका महत्व सबसे अधिक है। उनमें भारतीय जीवन और विचारों की व्याख्या ही मिलती है। भारतीय जीवन की पूरी छाप कला पर पड़ी है। इसकी एक विशेषता तो यह थी कि सामान्य जनता के धार्मिक विश्वास कला में बुद्ध, महावीर, शिव और विष्णु के उच्चतर धर्मों के साथ मिलकर परिग्रहीत हुए हैं। कोई भी धर्म जनता के विश्वासों से इतना ऊपर नहीं उठ गया कि उनमें आकाश पाताल का अन्तर हो जाय और वे एक दूसरे से अलग जा पड़े। भारतीय धर्म की पूरी बारहखड़ी में एक ओर बुद्ध, रुद्रशिव या नारायण विष्णु का तत्वज्ञान भी है और दूसरी ओर उन अनेक देवताओं की पूजा मान्यता भी है जो माताभूमि से सम्बन्धित थे और भय, व्रत या यात्रा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कहे गए हैं, जैसे यक्खमह, नागमह यूकमह, नदीमह, सागरमय, धनुर्मह चन्दमह, सुरुज मह, इन्द्रमह, खन्दमह (स्कन्द) रुद्दमह, रुक्खमह, चेतीयमह, आदि। देवपूजा के ये प्रकार जैसे लोक में थे वैसे ही कला में भी अपनाए गए। इस प्रकार महाजन और सामान्य जन दोनों की धार्मिक मान्यताओं का समादर भारतीय कलाओं में हुआ।

बुद्ध

ऐतिहासिक गौतम बुद्ध का जीवन जैसा भी तथ्यात्मक रहा हो कला में लोकोत्तर बुद्ध का जीवन ही लिया गया है और उसका घनिष्ट सम्बन्ध उन प्रतीकों से था जो मानवीय अर्थों से ऊपर दिव्य अर्थों की ओर संकेत करते हैं। उदाहरण के लिये तुषित स्वर्ग से बुद्ध की अवक्रान्ति, श्वेत हस्ती के रूप में माया देवी को स्वप्न और गर्भ प्रवेश। माता की कुक्षि से तिरश्चीर्ण जन्म, सप्त पद, नन्दोपनन्द नागों द्वारा प्रथम स्नान, चतुर्महारादिक देवों द्वारा चार पातों को लेकर बुद्ध का एक पात्र बनाना, अग्नि और जल सम्बन्धी प्रतिहार्य या चमत्कार का प्रदर्शन, नल गिरि नामक मत्त हस्ती का दमन, सहस्त्र बुद्धात्मक रूप का प्रदर्शन त्रिपरिवर्त, द्वादशाकार धार्म्य धर्मचक्र का प्रवर्तन, सहस्त्रत्रिंश देवों के स्वर्ग में माता को धर्मोपदेश, और सोने, चांदी और तांबे की सीढ़ियों से पुनः पृथ्वी पर आना इत्यादि ये कला के अंकन बुद्ध के स्वरूप के विषय में प्रतीकात्मक कल्पना प्रस्तुत करते हैं जिसका सम्बन्ध ऐतिहासिक बुद्ध से न हो कर लोकोत्तर अर्थात् बुद्ध के दिव्य स्वरुप से है।

शिव

सिंधुघाटी से लेकर ऐतिहासिक युगों तक लिंग विग्रह या पुरुष विग्रह के रूप में शिव का अंकन पाया जाता है। इन दोनों का विशेष अर्थ भारतीय धर्म और तत्वज्ञान के साथ जुड़ा हुआ है। एक ओर लोक वार्त्ता में प्रचलित शिव के स्वरुपों को ग्रहण किया गया किन्तु दूसरी ओर उनके साथ नये-नये अर्थों को जोड़कर उन्हें धर्म और दर्शन के क्षेत्र में नयी प्रतिष्ठा दी गई। तत्व का चिन्तन करने वाले आचार्य और कलाकार, दोनों ने प्रति पूर्वक समान उद्देश्य की पूर्ति की। उदाहरण के लिए कला में शिव के निम्नलिखित रूप मिलते हैं–पशुपति, अर्धनारीश्वर, नटराज कामान्तक, गंगाधर, हरिहर, यमान्तक, चन्द्रशेखर, योगेश्वर, नन्दीश्वर, उमामहेश्वर, ज्योतिर्लिग, रावणानुग्रह पंचब्रह्म, दक्षिणामूर्ति, अष्टमूर्ति, एकादशरुद्र, मृग–व्याध, मृत्युन्जय आदि। कला के इन रूपों की व्याख्या भारतीय धर्म तत्व में प्राप्त होती है और यदि ठीक प्रकार से देखाजाय तो कला और धर्म का एक ही स्रोत जान पड़ता है।

देव

भारतीय कला देवतत्त्व के चरणों में एक समर्पण है। यूप, स्तूप एवं प्रासाध्य देवगृह में सर्वत्र देवता निवास करते हैं। स्तूप एवं यूप का ऊपरी भाग ये तीनों देवसदन है। रूपों में भेद होने पर भी अर्थ एक ही है। एक ही देवतत्व अनेक देव और सिद्ध योनियों के रूप में प्रकट होता है। गन्धर्व, अप्सरा कुम्भाण्ड, नाग, यक्ष, नदी देवता सिद्ध विद्याधर आदि जितने जंतर देवता हैं सब एक ही महान् देव के विभिन्न रूप हैं।

रूप और अर्थ की एकता

भारतीय कला के अध्ययन के कई दृष्टिकोण हो सकते हैं, जैसे पुरातत्व गत सन्दर्भ का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निश्चय, निर्माण की विधि, शैली, तिथिक्रम, सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, और सर्वोपरि उस कला वस्तु का प्रतीकात्मक अर्थ जैसे प्लेटो के सौन्दर्यतत्व में, वैसे ही भारतीय सौन्दर्यतत्व में भी कला का सर्वोपरि महत्व है। बाह्य रुप का भी निजी महत्व है किन्तु वह भावों की अभिव्यक्ति का साधन मात्र है। रूप को शरीर कहा जाय अर्थ कला का प्राण है। कालिदास ने शब्द या रूप को जगन्माता और अर्थ को जगत्पिता कह कर कला की सर्वाधिक अभ्यर्थना की है—

वागर्थाविव सम्पृतौ। वागर्थप्रतित्तये जगतः पितरौ वन्दे पार्वती परमेश्वरौ।

जो जगत के माता पिता हैं वे ही कला के अर्थ और रूप के जनक जननी हैं। अर्थ अमूर्त्त लोक का और रूप मर्त्य जगत का प्रतिनिधि है। दोनों ही भगवान् विष्णु के दो रूप हैं। एक परम रूप और दूसरे को विश्व रूप कहा गया है। (विष्णु पुराण ६।७।५४) समस्त विश्व के नाना पदार्थों के मूल में अर्थतत्व ही नियामक है जिसे भावना कहते हैं अर्थात् मनुष्यों के हृदय में जो मनोभाव रहते हैं वे ही कला और साहित्य में मूर्त होते हैं। यह भावना तीन प्रकार की होती है—

(१) ब्रह्म भावना—जिसका तात्पर्य है विश्वात्मक परम एक और अभिन्न मनोभाव जो ब्रह्म के समान निरपेक्ष और सर्वोपरि है। वही तो सब रसों और मनोभावों का मूल स्रोत है।

(२) कर्मभावना—उच्चतम देवों से लेकर मनुष्य एवं इतर प्राणियों तक के जो प्राकृत मनोभाव हैं वे इसके अंतर्गत आते हैं।

उभय भावना :—

इसमें विश्वात्मक ब्रह्म तत्व और मानुषी कर्म इन दोनों का संयोग आवश्यक है। केवल कर्मभावना पर्याप्त नहीं है। यदि कला की सीमा वहीं तक हो तो कला का सोता सूख जायेगा। और वह चित्रों के समाजन निर्जीव ठठरी रह जायेगी। कला प्राणवन्त तभी बनती है जब उसके रूपात्मक पार्थिव शरीर में भावात्मक देवांश प्रवेश करता है। कलात्मक रूप में भावात्मक देव की प्रतिष्ठा ही कला की सच्ची प्राण प्रतिष्ठा है। मानुषी कर्म के साथ ब्रह्म ज्ञान के सम्मिलन से ही राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर, बनते हैं जो कला के सच्चे आराध्य हैं।

कला के रूपों के मूल में छिपे हुए सूक्ष्म अर्थ का परिचय प्राप्त करने से कला की सौन्दर्यानुभूति पूर्ण और गम्भीर बनती है यही भारतीय मत है। अध्यात्म के बिना केवल सौन्दर्य या चारुतत्व सौभाग्य विहीन है। उस अवस्था में कला की स्थिति उस स्त्री के समान है जो अपना पति न पा सकी हो। केवल रूप को कवि ने निन्दित कहा है किन्तु अध्यात्म अर्थ के साथ वही पूजनीय बन जाता है जैसे विश्वरूपों के भीतर जो भगवान का अध्यात्म रूप है उसीके ध्यान से आत्मशुद्धि होती है। जैसे अग्नि घर में प्रविष्ट होकर उसे दग्ध कर देता है वैसे ही कला के आधार से चित्त में जो भाव अनुप्राणित या या प्रेरित होते हैं उनसे मन का मैल हट जाता है—

तद् रूपं विश्वरूपस्य तस्य योग युजानृप, चिन्त्यमात्य विशुद्धयर्थं सर्व किल्विष नाशनम्।
यथाग्नि रुद्धत शिखः कक्षंदहति सानिलः, तथा चितस्थितोविष्णुः योगिनां सर्व किल्विपम् ॥
(विष्णु पुराण ६।७।७३–७४

कला कार और रसिक दोनों केवल ध्यान और मगन की शक्ति से ही कला की चारुता का पूरा फल प्राप्त कर सकते है। प्रत्येक मूर्ति का आदि अन्त धार्मिक या आध्यात्मिक अभिव्यक्ति में है अर्थात् वह देवतत्व की प्रतीक मात्र है। ●

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org